अष्ट प्रवचन

卐

श्री तारणस्वामी विरचित
श्री 'ज्ञानसमुच्चयसार' आदि ग्रंथों पर
पू० श्री कानजी स्वामी के

– सम्यक्त्व प्रेरक –
आठ अमृत-प्रवचन

संकलनकर्ता
ब्र० हरिलाल जैन
'ज्ञान रश्मि' सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

भूमिका

गतवर्ष दस लक्षणी पर्यूषण पर्व के समय सागर निवासी समाजभूषण सेठ श्री भगवानदास जी, सेठ श्री शोभालाल जी टिमरनी निवासी सेठ श्री पुन्नालाल जी पंडित श्री जयकुमार जी आदि महानुभाव सोनगढ़ आये थे, उस समय समयसार की ४७ शक्ति के ऊपर एवं प्रवचनसार के ऊपर पू० श्री कानजी स्वामी के अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचन सुनकर वे बहुत प्रभावित हुये और उनको श्री तारण स्वामी रचित शास्त्रों का मार्मिक अर्थ गुरुदेव के श्रीमुख से सुनने की जिज्ञासा हुई। उनकी विनती के अनुसार पू० गुरुदेव ने श्री तारणस्वामी विरचित श्री ज्ञानसमुच्चयसार आदि ग्रन्थों के सार भाग के ऊपर आठ दिन तक अध्यात्म भावना से भरपूर विवेचन किया। यह आध्यात्मिक विवेचन सुनकर सेठ भगवानदास जी, शोभालाल जी आदि को बहुत प्रसन्नता हुई और आठों प्रवचन छपवाने की उनकी भावना हुई। तदनुसार इन आठों प्रवचनों का संग्रह इस "अष्ट प्रवचन" के रूप में प्रकाशित हो रहा है। प्रवचन के साथ मूल गाथायें भी दी गई हैं।

श्री 'ज्ञानसमुच्चयसार' आदि अनेक ग्रन्थों के रचयिता श्री तारणस्वामी विक्रम संवत् की १६ वीं शताब्दी में मध्य

प्राप्त में हुए। मध्यप्रांत में अनेकों जिज्ञासु आपकी अध्यात्म शैली से प्रभावित हैं। आपके द्वारा रचे गये ग्रन्थों में बार बार कुन्दकुन्दस्वामी, अमृतचन्द्र स्वामी, समन्तभद्रस्वामी आदि आचार्यों के समयसार, नियमसार, स्वयंभू स्तोत्र, योगसार, परमात्मप्रकाश आदि शास्त्रों का उल्लेख किया गया है। आपकी प्रतिपादन शैली अध्यात्मरस से भरपूर है इससे आपके ग्रंथ के ऊपर किया गया यह विवेचन भी अध्यात्म रसिक जनों को अवश्य रुचिकर होगा। आठ प्रवचनों के साथ-साथ उससे सम्बन्धित पद्यार्थ भी सम्मिलित कर दी गई हैं। सेठ श्री भगवानदास जी शोभालाल जी ने इन प्रवचनों के प्रकाशन के द्वारा अपनी अध्यात्म प्रचार की जो भावना व्यक्त की है वह प्रशंसनीय है। इन अष्ट प्रवचनों में सम्यक्त्व की बहुत ही महिमा व प्रशंसा की गई एवं बार बार उसके पुरुषार्थ की प्रेरणा दी गई है। हमारे साधर्मी बन्धु इस 'अष्ट प्रवचन' के द्वारा अध्यात्मरस का पान करके सम्यक्त्वमार्ग में उद्यमी बनें—यही कामना है।

दीपावली : २४८९ }
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) }

—ब्र० हरिलाल जैन।

भेंट

श्रीमंत समाज भूषण सेठ
भगवानदास शोभालाल जैन
सागर (म० प्र०)
की ओर से सप्रेम भेंट

विनम्र

कुन्दकुन्द-वाणी

✠

श्रावक को प्रथम क्या करना चाहिये ? सो कहते हैं कि—

गहिऊण य सम्मत्त सुणिम्मल सुरगिरीव णिक्कंपं ।
तं झाणे झाइज्जइ सावय ! दुक्खक्खयट्ठाए ॥८६॥

हे श्रावक ! प्रथम तो शुद्ध-निर्मल सम्यक्त्व को मेरुवत् निश्चल-दृढ़रूप से धारण करके, दुःख-क्षय के हेतु उसी को ध्यान में ध्याओ ।

सम्मत्त जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो ।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि ॥८७॥

जो सम्यक्त्व को ध्याता है वह जीव सम्यग्दृष्टि होता है और सम्यक्त्वरूप परिणमित होता हुआ यह जीव आठों दुष्ट कर्मों का क्षय करता है ।

(मोक्षप्राभृत)

आत्मज्ञ संत, परमोपकारी, सत्पुरुष—

पूज्य श्री कानजी स्वामी
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सम्यक्त्व-महिमा

किं बहुणा भणिएण जे सिद्धा णरवरा गए काले ।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणइ सम्मत्तमाहप्पं ॥८८॥

सम्यक्त्व की महिमा के लिये अधिक क्या कहें ? जो प्रधान पुरुष पूर्वकाल में सिद्ध हुये हैं और भविष्य में होंगे वह सम्यक्त्व का ही माहात्म्य जानो । सम्यक्त्व मुक्ति का प्रधान कारण है और सम्यक्त्व ही धर्म के सर्व अंगों को सफल करता है ।

ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया ।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ॥८९॥

सिद्धिकर ऐसे सम्यक्त्व को जिस पुरुष ने स्वप्न में भी मलिन नहीं किया है वह पुरुष धन्य है, वह कृतार्थ है, वह शूरवीर है, वही मनुष्य और पंडित है । सम्यक्त्व रहित नर पशु समान है ।

(मोक्षप्राभृत)

सम्यग्दृष्टि की रीति

चिन्मूरत दृगधारी की
मोहि रीति लगत है अटापटी।
बाहिर नारकिकृत दुख भोगे
अन्तर सुखरस गटागटी।
रमत अनेक सुरनि संग पै
तिस परनति तैं नित हटाहटी॥ चि० १

ज्ञानविराग शक्ति तैं विधिफल
भोगत पै विधि घटाघटी,
सदन निवासी तदपि उदासी
तातैं आस्रव छटाछटी॥ चि० २

जे भवहेतु अबुध के ते तस
करत बंध की झटाझटी,
नारक पशु तिय षंढ विकलत्रय
प्रकृतिन की ह्वै कटाकटी॥ चि० ३

संयम धर न सकै पै संयम-
धारन की उर चटाचटी,
तासु सुयश गुनकी दौलत को,
लगी रहै नित रटारटी॥ चि० ४

सम्यक्त्व

काल अनादि है, जीव भी अनादि है और भव समुद्र भी अनादि है। अनादिकाल से भव समुद्र में भटकते हुए जीव ने दो वस्तुएँ कभी प्राप्त नहीं कीं—एक तो श्री जिनवर स्वामी और दूसरा सम्यक्त्व।

—योगीन्दुदेव।

× × ×

न सम्यक्त्वसमं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

तीन काल और तीन लोक में जीवों को सम्यक्त्व समान कोई कल्याणकारी नहीं है और मिथ्यात्व समान अन्य कोई अकल्याण नहीं है।

— इसलिये —

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥

—आत्मख्याति

दो शब्द

'प्रवचन प्रवचन' पुस्तक के विषय में हम अपनी ओर से क्या कहें और इस प्रसंग में कुछ कहना हमारा काम भी नहीं है, फिरभी दो शब्दों में यदि कुछ निवेदन करदें तो यह अप्रासंगिक नहीं होगा।

सांसारिक व्यापार में बहुत समय तक लगे रहने वाले व्यक्ति उसमें एक न एक दिन थकान का अनुभव करते हैं। तब कुछ समय विश्राम और मानसिक शांति चाहते हैं। हमें भी कुछ ऐसा ही लगा कि वैभव की प्यास वो कभी न बुझने वाली प्यास की तरह कठिन रोग है, धनाभिलाषा एक नशा है और यशाभिलाषा का ज्वर जिसे चढ़ जाता है कठिनाई से ही उतरता है। फिर जीवन के प्रभात के पीछे सन्ध्या और दिन के पीछे रात है और एक के बाद एक बीतते ही चले जाते हैं। मानव-जीवन का उद्देश्य तो कुछ और ही है, वह जिस सुख और शांति को चाहता है आखिर वह उसे कैसे और कहाँ मिले ?

असर की इस लहर में गत वर्ष पर्युषण पर्व के अवसर पर हम दोनों भाई सोनगढ़ की ओर चल पड़े। वहाँ पर पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के दर्शन हुये और लगातार कुछ समय तक उनके कल्याणकारी सत्समागम में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके जीवन का एक एक क्षण भावनामय है।

उस समय स्वामी जी के प्रवचन श्री समयसार की ४३ गाथाओं के ऊपर चल रहे थे। उनके मुखारविंद से उन्हें बड़ा ही सरल और रोचक शैली में सुनकर मनमें अत्यंत आनन्द का अनुभव हुआ। उसी समय एक विचार मनमें आया कि हम लोग भी शरण स्वामी के चर्चा के पाठ-स्वाध्याय कुछ न कुछ प्रतिदिन

किया करते हैं, उनके आगम अर्थ का स्वामी जी से इसी सरल और रोचक शैली में कुछ प्रकाश पा सकें तो बहुत अच्छा हो। इसी प्रेरणा पर स्वामी जी से प्रार्थना की और उन्होंने कृपा-पूर्वक स्वीकृति दे दी।

तदनुसार स्वामी जी ने लगातार आठ दिन तक श्री तारण स्वामी रचित 'ज्ञानसमुच्चयसार', 'श्रावकाचार', उपदेश शुद्धसार' एवं 'ममलपाहुड' आदि ग्रंथों के विविध प्रसंगों पर आत्मविभोर कर देने वाले सारगर्भित आध्यात्मिक प्रवचन किये। उनकी वाणी से जो अमृत वर्षा हुई उसका रसास्वादन स्थानीय मुमुक्षु मंडल के लगभग ५०० श्रोताओं के साथ हम लोगों ने किया। हमारे साथ श्री सेठ चुन्नीलाल जी टिमरनी निवासी, श्री पंडित जयकुमार जी एवं अन्य अनेकों स्थानों से आये हुये सज्जन थे, और सभी को जो आनन्द प्राप्त हुआ वह अकथनीय है।

स्वामी जी के उपदेश! नहीं, वे तो दिव्य संदेश हैं "हे मानव! तेरे आत्म में अनन्तशक्ति है, तू कहाँ भूल रहा है? तेरे जीवन का मूल्य लाखों हीरों से बढ़कर है, यदि सम्यक्त्व मार्ग पर तू चल रहा है तो परमपद जो तेरा अविचल स्वरूप है उसे प्राप्त करने से तुझे कौन रोक सकता है?"

इस जीवन की जिस हाट में सैर कर रहे हैं केवल इतना तो न भूल जायें कि जो सौदा हमें लेना है उसे लेने के पहिले ही यह हाट कहीं उठ न जाय। अनेकों हितकारी भाव श्रोताओं के मनमें जाग्रत हुये।

पूज्य गुरुदेव के आठ दिन के वे आठ अमृत प्रवचन अध्यात्म प्रेमियों के लाभार्थ प्रकाशित करा देने की हमारी प्रबल भावना हुई और यह कार्य हमारे आग्रह पर कृपा करके श्री ब्रह्मचारी हरिलाल जी ने अत्यंत लगन और सतत परिश्रम से कुशलतापूर्वक पूरा कर दिया। हम उनके बहुत कृतज्ञ हैं। गुजराती भाषा में

यह प्रवचन 'अष्ट प्रवचन' के नाम से पुस्तक रूप में सोनगढ़ से प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी प्रेमी भी इससे वंचित क्यों रह जायें, अतः यह हिन्दी संस्करण आपके हाथों में है। हिन्दी संस्करण यदि सुन्दर बन सका है तो इसका श्रेय भाई ताराचन्द जी समैया एवं पं० परमेष्ठीदास जी ललितपुर को है। दिगम्बर जैन प्रकाशन छतरपुर ने इसका प्रकाशन व्यवस्था का काम अपने हाथों में लेकर हमें बड़ा सहयोग दिया है, तथा प्रवचनों के अन्त में जो "सम्यक्त्वी के आठ अङ्ग" तथा "सम्यग्दृष्टि की उज्ज्वल परिणति" का अद्भुत वर्णन है उसका हिन्दी अनुवाद श्री मगनलाल जी जैन ने बहुत ही सुन्दर शैली में किया है, अतएव हम सब सबके अत्यन्त आभारी हैं।

'अष्ट प्रवचन' में सम्यक्त्व की विशद एवं सुन्दर व्याख्या की गई है। शुद्धात्मा के स्वरूप का दिग्दर्शन और अनुभूतियों का सुगम चित्रण है जिनमें अध्यात्मभावों की स्पष्ट झलक पद पद पर दिखाई देती है। इन प्रवचनों में प्रवक्ता के मनकी विभिन्न भावनायें साक्षात् बोलती प्रतीत होती हैं, जिनका भाववैचित्र्य निःसंदेह अन्तर्मुखी आनन्द के समीप ले जाने वाला है।

पुस्तक कैसी है, यह तो पाठकों की रुचि-विशेष पर निर्भर करता है, किंतु हमें यह आशा अवश्य है कि अध्यात्मप्रेमी इससे प्रसन्न होंगे। इसे पढ़कर वे पायेंगे अन्तर के तारों में 'आत्म' की प्रतिध्वनि। इसी विश्वास के साथ आपके हाथों में यह भेंट है कि यदि इससे कल्याणकारी अध्यात्मभावों का कुछ भी प्रसार हो सका तो हम अपने प्रयास में यत्किञ्चित ही सही, सफल हुये समझेंगे।

सागर,
२४ अप्रैल, १९६५
महावीर जयन्ती दिवस

विनम्र—
भगवानदास शोभालाल जैन।

स्वामी जी के परम भक्त
अध्यात्म-रसिक

युगल बंधु

समाजभूषण सेठ भगवानदास जी

समाजभूषण सेठ शोभालाल जी

[१]
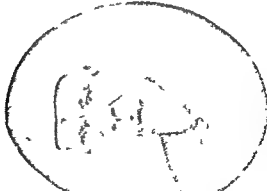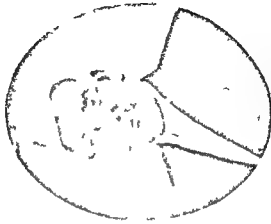
पहला प्रवचन

[वीर सं० २४८८—आश्विन कृष्णा ११]

卐 सम्यक्त्व मंगल रूप है 卐

ह 'ज्ञान समुच्चयसार' पढ़ा जाता है। श्री तारण स्वामी अध्यात्मरसिक थे, उनके द्वारा यह शास्त्र रचा गया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य आदि दिगम्बर सन्तों की आम्नाय के अनुसार सर्वज्ञान का सार उन्होंने अध्यात्मशैली से दिखाया है। 'ज्ञान समुच्चयसार' अर्थात् सन्तों का कहा हुआ सर्व श्रुतज्ञान का सार क्या है—यह इसमें दिखाया है।

यहाँ श्री तारणस्वामी रचित ज्ञान समुच्चयसार में से [illegible]४वीं गाथा चलती है, उसमें सम्यक्त्व की महिमा का वर्णन है। ग्रन्थ

[१]

पहला प्रवचन

[वीर सं० २४८८—आश्विन कृष्ण ११]

卐 सम्यक्त्व मंगल रूप है 卐
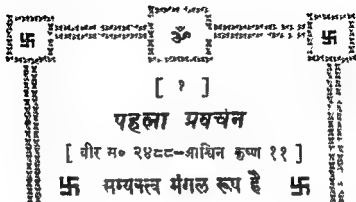
यह 'ज्ञान समुच्चयसार' पढा जाता है। श्री तारण स्वामी अध्यात्मरमिन थे, उनके द्वारा यह शास्त्र रचा गया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य आदि दिगम्बर सन्तों की आम्नाय के अनुसार सर्वज्ञान का सार उन्होंने अध्यात्मशैली से दिखाया है। 'ज्ञान समुच्चयसार' अर्थात् सन्तों का कहा हुआ सर्व श्रुतज्ञान का सार क्या है—यह इसमें दिखाया है।

यहाँ श्री तारणस्वामी रचित ज्ञान समुच्चयसार में से [illegible]५वीं [illegible] उसमें सम्यक्त्व की महिमा का वर्णन है। ग्रन्थ

के प्रारम्भ में शुद्ध सिद्ध भगवान को नमस्कार रूप मंगलाचरण किया है, एवं शुद्ध आत्मा को, ऋषभादि सर्व तीर्थंकरों को और पंच परमेष्ठी भगवंतों को भक्ति के साथ नमस्कार किया है। यहां पच्चासवीं गाथा में जो सम्यक्त्व की प्रशंसा है वह भी स्वयं मंगलरूप है। सम्यग्दर्शन स्वयं ही मंगलरूप है। गाथा में पहला शब्द है 'जिन', वह भी मंगलरूप है—

जिन उक्त शुद्ध सम्यक्त, साध्य भव्य लोकयं।
तस्यास्ति गुण निरूप च, शुद्ध साध्य बुधेर्जनै ॥२५॥

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित निर्दोष शुद्ध सम्यग्दर्शन भव्य जीवों को साधने योग्य है। अनन्त गुणों की राशि रूप जो आत्मस्वभाव है वह सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में झलकता है, शुद्ध सम्यक्त्व व आत्मा का शुद्ध स्वभाव बुधजनों के द्वारा साध्य है। बुद्धिवान सम्यग्ज्ञानी महात्मा सम्यक्त्व से शुद्ध आत्मा को साधते हैं। भगवान् जिनेन्द्रदेव के आगम का यह उपदेश है कि किसी भी तरह प्रयत्न करके अपने अन्तर में निश्चय अर्थात् शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये। जहां निश्चय सम्यक्त्व हो वहीं पर आत्मा के शुद्ध स्वभाव का प्रकाश अर्थात् प्रगट अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन के द्वारा सम्यग्ज्ञानी महात्मा ही शुद्ध वस्तु को साध्य करते हैं और वे ही मुक्ति पद को पाते हैं।।

देखिये यह निश्चय सम्यक्त्व की महिमा!

श्री तारणस्वामी ने इस गाथा में 'जिन उक्त' ऐसा कहकर भगवान का स्मरण किया है। परम वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिन स्वयं मंगलरूप हैं, और अपने ज्ञान में उसका जो निर्णय किया वह भी मंगल है। भगवान की आत्मा को द्रव्य-गुण में जिनत्व त्रिकाल था,—परम सर्वज्ञता की सामर्थ्य सर्वज्ञ शक्ति में

भरी थी, उसको पर्याय में प्रगट करके वे साक्षात् जिन-सर्वज्ञ हुये। ऐसे जिन भगवान के स्वरूप हा यह आत्मा है। तारण स्वामी बार-बार कहते हैं कि 'अप्पा सो परमप्पा'।

"जिन सो ही है आतमा, अन्य होई सो कर्म,
यही वचन में समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।"

(श्रीमद् राजचन्द्र)

ऐसे जिन स्वरूप आत्मस्वभाव का निर्णय करने वाले को भगवान जिनेन्द्रदेव के प्रति बहुमानभक्ति का भाव आता है। सिद्धप्रभु को वाणी नहीं, अरिहन्त जिनको वाणी का योग है, इसलिये 'जिनोक्त' कह करके भगवान जिनेन्द्रदेव के उपकार का स्मरण और बहुमान किया है। जो जीव वीतराग देव के कहे हुये तत्व को समझा है वह जिनदेव के उपकार को भूलता नहीं है।

जिन भगवान का कहा हुआ शुद्ध सम्यक्त्व ही जगत में सार है, इसके बिना चाहे जितना दूसरा जानपना हो लेकिन शुद्ध सम्यक्त्व प्रगट न किया तो वह सब निःसार है। शुद्ध सम्यक्त्व का अर्थ है स्वाश्रित निश्चय सम्यक्त्व। देव-गुरु की ओर के श्रद्धा के राग को सम्यक्त्व कहना सो अशुद्ध सम्यक्त्व है, व्यवहार है। शुद्ध आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति शुद्ध सम्यक्त्व है, उसके साथ व्यवहार हो भले लेकिन वह आदरणीय नहीं। एक रूप ज्ञायक-भाव सन्मुख हो करके जो सम्यक् अनुभव सहित प्रतीति होती है वही शुद्ध सम्यक्त्व है, और वही बुधजनों को आदरणीय है। ऐसे शुद्ध सम्यक्त्व सहित देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा होना सो व्यवहार है। व्यवहार पराश्रित रागरूप होने से अशुद्ध है, इसलिये अकेले व्यवहार का राग करते करते उसके

द्वारा शुद्ध सम्यक्त्व हो जाय, ऐसा कभी नहीं हो सकता।

कारण—कार्य की शुद्धता के बारे में श्री तारणस्वामी ८० वीं गाथा में कहते हैं कि—

कारण कार्य्य सिद्ध च, त कारण कार्य उद्यम ।
स कारण कार्य शुद्ध च, कारण कार्य सदा बुधं ॥८०॥

कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। कारण वह है कि जिससे कार्य सिद्धि का पुरुषार्थ हो सके। यहां मोक्ष के साधन में कारण और कार्य दोनों ही शुद्ध हैं। बुद्धिमान जनों को सदा शुद्ध कारण का सेवन करना चाहिये।

देखो, यह कारण-कार्य की बात! शुद्ध कार्य का कारण भी शुद्ध ही होता है। राग तो अशुद्धता है, राग कारण और शुद्धता उसका कार्य, ऐसा हो नहीं सकता। अथवा, व्यवहार सो कारण और निश्चय उसका कार्य, ऐसा भी नहीं होता। व्यवहार करते करते निश्चय की प्राप्ति हो जायगी। ऐसा कारण-कार्यपन निश्चय व्यवहार को नहीं है। मोक्ष तो पूर्ण शुद्धता है, उसका कारण भी शुद्ध (निश्चय रत्नत्रय) ही है*। शुद्ध कारण से शुद्ध कार्य होता है और अशुद्ध कारण से अशुद्ध कार्य होता है। कारण वह है जिसके द्वारा कार्यसिद्धि का उद्यम हो। शुद्ध सम्यक्त्व रूप कार्य राग से तो सिद्ध नहीं होता, इसलिये राग उसका कारण नहीं। व्यवहार का जो विकल्प है वह शुद्ध सम्यक्त्व का कारण नहीं है। शुद्ध चिदानन्द आत्मा का अवलम्बन लेने से शुद्ध सम्यक्त्वादि

---

* "मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ ।
समजाव्यो संक्षेप मां, सकल मार्ग निर्ग्रंथ ॥"
श्रीमद् राजचन्द्र (आत्मसिद्धि)

कार्य होता है। यही शुद्ध कारण है। समयसार में आचार्य देव ने महान सिद्धांत कहा है कि—

'भूयत्थ मस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो'

भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन है। अहा, इस समयसार में तो बहुत शास्त्रों के राज आचार्य देव ने खो दिये हैं। ऐसा कभी नहीं बन सकता कि कारण अशुद्ध हो और उसके सेवन से शुद्ध कार्य की उत्पत्ति हो जाय। राग के सेवन करते करते शुद्धता कभी भी नहीं हो सकती। श्री जिन भगवान के कहे हुये सम्यक्त्व के कारण और कार्य दोनों शुद्ध हैं, उनका ज्ञान करके बुद्धिमानों को सदा उनका सेवन करना चाहिये। बुद्धिमान जीवों को, जिज्ञासु जीवों को आत्मार्थी जीवों को अंतर स्वभाव के सन्मुख के पुरुषार्थ को शुद्ध कारण समझना चाहिये, और जो पराश्रित भाव हो उसको अशुद्ध समझ करके उसका सेवन छोड़ना चाहिये।

"निश्चय सम्यक्त्व की बात हमें मालूम नहीं पड़ती, इस लिये पहले सम्यक्त्व के बिना ही व्यवहार चारित्र-महाव्रत ले लो, यह व्यवहार चारित्र करते करते भविष्य में कभी भी निश्चय सम्यक्त्व हो जायगा"—ऐसा यदि कोई प्रतिपादन करे तो उसे जिनोक्त सम्यक्त्व का या उसके कारण कार्य की खबर नहीं है। समयसार हो या ज्ञान समुच्चयसार हो, भगवान के कहे हुये कोई भी शास्त्र हो, उनमें भगवान के कहे हुये ज्ञान का सार तो एक ही है कि अंतर्मुख होकर शुद्ध कारण का सेवन करना चाहिये।

'ममल पाहुड' (भाग २ पृष्ठ १५२) में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि यहां ध्रुव शब्द का प्रकाश हुआ है अर्थात् ध्रुव शब्द

के वाच्य ध्रुव आत्मा का प्रकाश हुआ है। यहाँ समताभाव मयी आत्मा व शुद्ध भाव का आनन्द हो रहा है। यहाँ ध्रुव ज्ञान का उदय हुआ है। शुद्ध आत्मा में रमण करना ही ध्रुव आत्मा का दर्शन है। ध्रुव पद-अविनाशी पद चैतन्यमूर्ति आत्मा है, उसके अनुभव रूप शुद्धोपयोग की अनेक गाथाओं के द्वारा बहुत महिमा बताई गई है। स्वानुभव रूप शुद्धोपयोग में ध्रुव पद प्रगट होता है अर्थात् वह प्रगट अनुभव में आता है। पृष्ठ १४७ में कहते हैं कि "परम सुखदायी सिद्धपद के लाभ के लिये भव्य जीव का परम कर्त्तव्य है कि वह सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके आत्मा का अनुभव करता चला जावे। जितना जितना आत्मानन्द का साधन है वह विकारों का हटाने वाला है, कषायों का मिटाने वाला है, वही कर्मों की निर्जरा करने वाला है व वही मोक्ष-नगर में पहुँचाने वाला है। आत्मानुभव ही यथार्थ मोक्षमार्ग है व निजधर्म है। आत्मा को छोड़कर और कोई सुन्दर वस्तु नहीं है।

'ध्रुव' शब्द के द्वारा ध्रुव आत्मस्वभाव को प्रकाशित किया है। उस आत्मस्वभाव के सन्मुख होने से समताभाव रूप आत्म आनन्द होता है। ऐसे स्वभाव को भगवान की वाणी ने प्रकाशित किया है। तारणस्वामी कहते हैं कि स्वानुभव ही संसार से तारने वाला है, और स्वानुभव रूप जो मोक्षमार्ग है उसका शुभ ज्ञान अनुभवी ज्ञानी सन्तों ने प्रगट किया है। जहाँ अपने को निज स्वभाव का भान हुआ वहाँ निमित्त से ऐसा भी कहने में आता है कि भगवान की और सन्तों की वाणी ने आत्मा को प्रकाशित किया,-ऐसी व्यवहार की रीति है।

ध्रुव आत्मा के प्रकाश से अर्थात् अनुभव से मोक्षमार्ग की

सिद्धि होती है। ऐसे आत्मा का शुद्ध सम्यक्त्व भव्यजीवों को साधने योग्य है। साधने योग्य क्या है?—कि आत्मा का शुद्ध सम्यक्त्व, योग्य सुपात्र जीव उसको साधते हैं, अभव्य जीव ऐसे सम्यक्त्व को कभी नहीं साधते। अज्ञानी शुभ राग को-पुण्य को साध्य मानकर उसी में रुक जाते हैं। धर्मात्मा को शुद्ध सम्यक्त्व में ज्ञानपुञ्ज आत्मा झलकता है, प्रतीति में आता है, अनुभव में आता है। बुधजनों को ऐसा शुद्ध सम्यक्त्व साध्य है। वे शुद्ध स्वभाव के अवलंबन से शुद्ध का साधन करते हैं। शुद्ध के साधन में अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साधन में राग का-अशुद्धता का अवलंबन है ही नहीं।

'बुधे जनै शुद्ध साध्य' बुधजनों को अर्थात् बुद्धिमान मुमुक्षु जीवों को शुद्ध स्वरूप का ही साधन करना चाहिये, बीच में रागादि आवें उनको साधन नहीं मानें और न उनको साध्य भी करना चाहिये। जो जीव राग को शुद्धता का साधन मानता है वह वास्तव में बुद्धिमान नहीं है किन्तु मूर्ख है। श्रद्धा में, ज्ञान में एवं चारित्र में साध्य तो शुद्ध आत्मा ही है। सम्यग्ज्ञानी महात्माओं ने शुद्ध वस्तु ही साध्य की है। अंतरंग में ऐसे शुद्ध वस्तु स्वभाव की प्रतीत करने से शुद्ध सम्यक्त्व होता है, यही प्रथम कर्तव्य है और वह मंगल है।

मोक्षार्थी को सबसे पहले सम्यग्दर्शन आवश्यक है। बिना सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग में एक डग भी नहीं चला जा सकता। ज्ञान और व्रत-तप सबके सब सम्यग्दर्शन के बिना नीरस हैं, निःसार हैं। इस प्रकार सम्यक्त्व की श्रेष्ठता जानकर मुमुक्षु का उसके लिये प्रयत्न करना कर्तव्य है। किसको सम्यग्दर्शन होता है यह बात छब्बीसवीं गाथा में कहते हैं—

त सम्यक्त्व उक्त शुद्ध केरि संकेत रूत ।
त सम्यक्त्व तिष्ठियस्य अन्यथाम वमत ॥
उत्पद्यते येपि स्थान श्रेष्ठ प्रौढ प्रमाण ।
त सम्यक्त्व कस्य प्राप्त स्य दृष्टि प्रयोजन ॥२६॥

यह सम्यक्त्व निश्चय से शुद्ध बुद्ध स्वरूप है, तीन भुवन में यह श्रेष्ठ है। वहा सम्यक्त्व शुद्ध कहा जाता है कि जहां आत्म स्वरूप में कोई शका नहीं है। ऐसे सम्यक्त्व में स्थिर-दृढ रहना चाहिये। इस सम्यक्त्व की उत्पत्ति किसी भी स्थान मे हो सकती है। चाहे भगवान के समवसरण म हो या नरक वास में हो, किसी भी स्थान मे हो किन्तु अतर्मुख स्वभाव में दृष्टि करके नि शक प्रतीत करने से किसी भी स्थान में सम्यग्दर्शन होता है। गृहवास म हो या स्त्री पर्याय मे हो उसे भी शुद्ध आत्मा के साधन से सम्यक्त्व होता है, यह सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है, प्रौढ है अर्थात् विवेक से भरा है, भेद ज्ञान रूप विवेक सहित है एव प्रमाण रूप है। बिना सम्यग्दर्शन के ज्ञान या चारित्र कोई प्रमाण रूप नहीं, सम्यग्दर्शन सहित हो तब ही प्रमाण रूप है। ऐसे शुद्ध सम्यक्त्व का प्रकाश किसी विरले जीव को ही होता है। किसी विरले जीव की ही दृष्टि अपने अर्थ के ऊपर-प्रयोजन भूत वस्तु स्वभाव के ऊपर जाती है। सम्यग्दर्शन परम अद्भुत रत्न है, किसी निकट मोक्षगामी भव्यजीव को वह प्रगट होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट करके दृढता से उसकी आराधना करनी चाहिये।

सम्यग्दृष्टि यथार्थ वस्तु स्वरूप को देखता है, मिथ्यादृष्टि अर्थ का अनर्थ करके वस्तु स्वरूप को विपरीत मानता है, वस्तु स्वरूप को मानना या विपरीत प्ररूपण करना चोरी है,—ऐसा तारणस्वामी गाथा ३५० म कहते है, देखिये—

स्तेय पद रहिय, जिन उक्त च लोपन जाने ।
अनेय व्रत धारी स्तेय महाव रहियेन ॥३५०॥

आगम के पदों का कुछ का कुछ विपरीत अर्थ करके जिनोक्त कथन को लोपना, छिपाना इसे चोरी जानो। और आत्मस्वभाव में रमणता रहित एवं आत्मज्ञान से शून्य होने पर भी अनेक व्रत आदि धारण करके अपने को मुनि समझना यह भी चोरी है। उसने कौन सा चोरी की? उसने वीतरागी स्वभाव की चोरी की। व्रतादि राग से धर्म मान करके वह अपनी आत्मा को ठगता है इससे वह चोर है। मिथ्यात्व सहित होने पर भी जो अपने को व्रती या साधु मानता है वह अपनी आत्मा को ठगता है और व्रत के तथा साधु दशा के यथार्थ स्वभाव का लोप करता है इससे वह चोर है। और अपने को साधु मनवाकर दूसरे लोगों को भी वह ठगता है।

देखो, यह परमार्थ चोरी की व्याख्या, जिनोक्त अर्थ का लोपन करना चोरी है अर्थात् मिथ्यात्व ही बड़ी चोरी है। 'जिनोक्त जिनोक्त' ऐसा स्थान स्थान पर कह करके तारण स्वामी ने जिनेन्द्र भगवान का बहुमान किया है। जिनोक्त अर्थात् जिन भगवान के कहे हुए आगम के यथार्थ कथन को और उसके भाव को छिपाना–लोपना अन्यथा निरूपण करना सब चोरी है। गाथा ३५१ में भी कहते हैं कि—

स्तेय अज्ञान, ज्ञानमय अप्प महाव गोपति ।
अज्ञानं मिच्छत्त, तिक्त स्तय विषय सुह रहिय ॥३५१॥

अज्ञान है सो चोरी है ज्ञानमय अपने आत्मस्वभाव का गोपन करता है इसलिये अज्ञान ही बड़ा चोरी है। राग से धर्म

मानने वाला जीव भगवान के मार्ग का बड़ा चोर है, चैतन्य निधान को वह लूट रहा है, राग से धर्म मानने से चैतन्य निधान का लोप होता है। स्वकीय शुद्ध आत्मा को भगवान ने जैसा कहा वैसा जाने नहीं, मानें नहीं और प्रवाहिक शुभ राग से ही अपने को धर्मी या मुनि मान ले तो वह जिन शासन का चोर है। जिन शासन में तो भगवान ने व्रत पूजादि को पुण्य कहा है और मोह रहित आत्म-परिणाम को ही धर्म कहा है, इनसे जो विपरीत मानता है वह चोर है। स्वभाव की बड़ी चोरी उसने की, राग से धर्म मानकर उसने आत्मा के ज्ञान स्वभाव का गोपन किया, इतना बड़ा और कोई पाप नहीं। स्वभाव की आराधना से रहित वह जीव अपराधी है-दोषी है।

वैसे ही 'असत्य' की व्याख्या करते हुये गाथा ८४ में तारण स्वामी कहते हैं कि—

मिथ्या मिथ्या मय रूपं, असत्य सहित भावना।
अनृत अचेत दिष्टन्ते, मिथ्यात निगोय पत ॥८४॥

मिथ्यात्व से जिसकी दृष्टि अंध है-ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव पदार्थों के स्वरूप को विपरीत ही देखता है, इससे वह असत्य पदार्थ को ही भाता है। मिथ्या अभिप्राय से वस्तु स्वरूप को जो मिथ्या देखता है और मिथ्या निरूपण करता है वह बड़ा असत्यवादी है, उसका सब कुछ अज्ञान ही अज्ञान है, सब झूठ है। उसको अचेतन और रागादि परभाव ही अपने भासते हैं किन्तु अपना चेतनवंत स्वभाव उसको भासता नहीं। ऐसा जीव असत्य भाव के सेवन से निगोद में रूलता है, उसकी ज्ञान पर्याय अत्यन्त हीन हो जाती है। देखिये यह मिथ्या अभिप्राय का फल! सर्व पापों में बड़ा पाप मिथ्यात्व है और उसका फल

भी बहुत बुरा है। कहां तो मनुष्य पर्याय और कहां निगोद का एकेन्द्रिय पर्याय ? इससे मिथ्यात्व जैसे महापाप से बचने के लिये बुधजनों को चाहिये कि व स्वभाव के उद्यम से शुद्ध सम्यक्त्व की साधना करें। गाथा ८५ में भी कहते हैं कि—

शुद्ध तत्त्व स्वय रूप, मुक्ति पथ जिन भासित ।
अन्यो अज्ञान सद्मार्ग, मिथ्या व्रत तप क्रिया ॥८५॥

शुद्ध आत्मिक तत्व, जो अपना ही स्वभाव है उसी मे लीनता मोक्ष का मार्ग है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है, इससे अन्य जो कोई मार्ग है वह अज्ञान स्वरूप है, आत्मानुभव शून्य व्रत, तप, चारित्र सब मिथ्या है।

मिथ्यादृष्टि का दोष जन्मान्ध से भी बहुत बड़ा है, क्योंकि जन्म से अंधा तो पदार्थ को देखता नहीं है लेकिन यह मिथ्या दृष्टि तो चक्षु के होने पर भी पदार्थ के स्वरूप को विपरीत देखता है और अर्थ का अनर्थ करता है। इस तरह मिथ्यात्व ही बड़ा असत्य है। सम्यक्त्व के द्वारा उस असत्य का महा पाप छूट जाता है।

यह शुद्ध सम्यक्त्व ही है जिसमे किसी तरह का शंका नहीं। जहां निज स्वरूप परमात्मा को स्वानुभव पूर्वक निःशंक दृष्टि में लिया वहां धर्मी को उसम बिल्कुल शंका नहीं रहती,—ऐसा शुद्ध सम्यक्त्व है। 'मैं ही परम रूपधारी परमात्मा हूँ', ऐसी दृष्टि मे धर्मी को जरा भी शंका नहीं उठती। ऐसे स्वरूप की निःशंक श्रद्धा करके उसी मे जम जाना यह धर्मी का कर्तव्य है।

ऐसा निःशंक श्रद्धारूप सम्यक्त्व भगवान के समवसरण में भी होता है और सातवें नरक म भी होता है, देव को भी होता

है और तिर्यंच को भी होता है, भोगभूमि हो या कर्मभूमि, विदेह क्षेत्र हो या भरतक्षेत्र, म्लेच्छखंड हो या आर्य खंड, पुरुष हो या स्त्री-किसी भी जगह योग्य भव्यजीव को सम्यक्त्व हो सकता है। विरले ही जीव अन्तर स्वभाव के साधन से सम्यक्त्व प्रगट करते हैं। अहा यह शुद्ध सम्यक्त्व तीन लोक में श्रेष्ठ है, सार भूत है प्रौढ है-महान है, प्रमाण रूप है एवं जिसने ऐसा सम्यक्त्व प्रगट किया वह धर्मात्मा भी जगत में श्रेष्ठ है, चाहे वह स्त्री पर्याय में हो तो भी वह श्रेष्ठ है, वह सारभूत है, वह प्रौढ है-महान विवेकी है और वह प्रमाण रूप है। इस शुद्ध सम्यक्त्व को सार कहने से ऐसा समझ लेना चाहिये कि जो राग है वह सार नहीं है, व्यवहार है यह भी सार नहीं, श्रेष्ठ नहीं, प्रौढ नहीं है।

ऐसा महिमावंत सारभूत उत्तम शुद्ध सम्यक्त्व कोई सुदृष्टिवंत विरले जीव को होता है, किसी विरले जीव की ही दृष्टि शुद्ध तत्त्व के ऊपर जाती है और उसी को सम्यक्त्व होता है। 'अप्पा सो परमप्पा' ऐसी धर्मी की दृष्टि है—यह बात श्री तारण स्वामी ने बार-बार बतलाई है।

२७ वीं गाथा में सम्यक्त्व की महिमा और भी बताते हैं—

त सम्यक्त्व शुद्ध बुद्ध, तिहुवन गरुवं, अप्प परमप्प तुल्य।
अव्याबाह अनंत, अगुरुलघु स्वयं सहजानंदरूप ॥
रूपातीत व्यक्तरूप, विमलगुणनिहि, ज्ञानरूप स्वरूप।
त सम्यक्त्व तिविधिरत्व, तिअर्थ समय, सपूर्ण शाश्वत पदं। २७॥

यह सम्यक्त्व निश्चय से शुद्ध बुद्ध स्वरूप है, शुद्ध बुद्ध स्वरूप आत्मा की प्रतीत रूप सम्यक्त्व है, वह तीन लोक में श्रेष्ठ है,

यह 'अप्प परमप्प तुल्ल'-अर्थात अपनी आत्मा को परमात्मा के तुल्य देखता है, उसमें छोटे बड़े की कल्पना नहीं। देखो, सम्यक्त्व कैसे आत्मा की श्रद्धा करता है यह दिखाया है, अपनी आत्मा को परमात्मा के बराबर देखते हैं, उसमें रचमात्र फर्क नहीं। कैसा है आत्मा ? बाधा रहित है, अनंत शक्ति से भरपूर है, स्वाभाविक आनन्द स्वरूप है,-ऐसे आत्मा की प्रतीत भी आनंद के अनुभव सहित है। आत्मा पौद्‌गलिक रूप से भिन्न अमूर्त अरूपी है-रूपातीत है, ऐसे आत्मा का ध्यान, सो रूपातीत ध्यान है। स्वानुभव में ऐसा आत्मा प्रगट होता है, वह रूप से अगोचर होने पर भी स्वानुभव से व्यक्त-प्रगट होता है। 'स्वानुभूत्या चकासते' ऐसा जो समयसार के मांगलिक में ही आचार्यदेव ने कहा है वही बात तारणस्वामी ने यहां लिखाई है। और भी कहते हैं कि आत्मा निर्मल गुणों का निधान है, अनंत निर्मल शक्तियाँ के निधान आत्मा में हैं। उस निधान को स्वानुभव के द्वारा सम्यग्दृष्टि खोलता है, स्वानुभव में अपनी आत्मा को ज्ञानाकार स्वरूप से वह अनुभवता है। ऐसे शुद्ध आत्मा की प्रतीत रूप सम्यक्त्व प्रगट करके मुमुक्षु को उसी सम्यक्त्व भाव में स्थिर रहना चाहिये। ऐसे सम्यक्त्व के परिणमन से निरन्तर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मय आत्मा पूर्ण अविनाशी पद में विराजित होकर झलक उठता है।

देखिये, यह निश्चय सम्यक्त्व और उसका फल ! शुद्ध सम्यक्त्व कहो या निश्चय सम्यक्त्व कहो, सब मत्र पदार्थों में सारभूत शुद्ध अविनाशी एक सर्वज्ञ पद है, और वह सर्वज्ञ पद अपने स्वरूप में ही है। ऐसे निज स्वरूप का ध्यान यह धर्मी का ध्येय है। गाथा ५९ में कहते हैं कि—

शुद्ध च सर्वशुद्ध, च सर्वज्ञ शाश्वत पद ।
शुद्धात्मा शुद्ध ध्यानस्य, शुद्ध सम्यग्दर्शन ।।५९।।

सर्व पदार्थों में शुद्ध और सर्व पदार्थों में उत्तम सर्वज्ञस्वरूप एक अविनाशी शुद्ध चैतन्य पद है, वह ही शुद्ध ध्यान के विषय रूप-ध्येयरूप शुद्ध आत्मा है । और ऐसे शुद्ध आत्मा का ध्यान, यही शुद्ध सम्यग्दर्शन है, ऐसा शुद्धात्मा ही धर्मी का ध्येय है । धर्मी का ध्येय निज स्वरूप है, वह शुद्ध है, अशुद्धता (राग या व्यवहार) वह धर्मी का ध्येय नहीं, उसके आश्रय से किंचित भी लाभ नहीं। सम्यग्दर्शन निश्चय से शुद्ध बुद्ध स्वरूप है और वह तीनों लोक में महान है । "अप्प परमप्प तुल्य" ऐसा वह देखता है अर्थात् अपनी आत्मा को परमात्मस्वरूप से वह प्रतीत में लेता है ।

ऐसा शुद्ध सम्यक्त्व निराबाध है, उसको बाधा पहुँचाने में जगत में कोई समर्थ नहीं, वह स्वाभाविक सहज आनंद के अनुभव स्वरूप है । अहा ! सम्यग्दर्शन अतीन्द्रिय आनन्द से भरा है । सम्यग्दर्शन अपने रूपातीत-अतीन्द्रिय आत्मा को अपने अन्तस्तल में देखता है । रूप से अतीत एवं राग से भी पार,-किन्तु चैतन्य रूप में व्यक्त-अनुभव गम्य जिसका रूप है ऐसा शुद्ध आत्मा सम्यग्दृष्टि के ध्यान का विषय है । वह पुद्गल के रूप से पार है परन्तु स्वकीय चैतन्य रूप से व्यक्त अनुभव में आता है । यह आत्मा निर्मल गुणों का निधि है। जैसे खानि में से, निधि में से वस्तु निकालते ही रहो फिर भी वह कभी खाली नहीं होते वैसे ही चैतन्य-निधान में से निर्मल पर्यायें लेते ही रहो किन्तु वह कभी खाली नहीं होता। ऐसे अनंत निर्मल गुणों को निधान अपने आत्मा में भरा है उसको सम्यग्दृष्टि देखता है।